आनन्दवाणी

मा साहित्य प्रकाशन

१

एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति

आनन्दवाणी

अङ्क – १

पूज्यपाद अनन्त श्री
स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराजकी
वाणीका संकलन

सत् साहित्य प्रकाशन

श्रीहरिः

निवेदन

यह आनन्द वाणी पूज्यपाद अनन्त श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज के प्रवचनों, पत्रों, लेखों तथा वार्तालाप का संग्रह है, जो भिन्न-भिन्न अवसरोंपर भिन्न-भिन्न भक्तों को लिखे या कहे गये हैं। इन्हें श्रीमहाराजजी के भक्तों ने अपनी-अपनी डायरियों में नोट कर रखा था। उनका यह एक अंश है। इसमें विषय का तारतम्य या संगति ढूँढ़ना अपेक्षित नहीं है। हमारा विश्वास है, यह आपको रसास्वादन करायेगी और आनन्द तो देगीही, बुद्धिमें विवेक, हृदयमें सद्भाव और प्रेम तथा जीवन में सदाचार भी आयँगे। इन वाणियों को हम आगे भी कई अंकों में आपको भेंट करेंगे।

बंबई ...
आनन्द-जयन्ती २०१९

—दादा

विषय-प्रवेश

❀

उत्तिष्ठत! जाग्रत!! प्राप्य वरान्निबोधत!!!

"उठो, जागो और बड़ोंकी सेवामें
उपस्थित होकर जानो।"

शिवसङ्कल्प

*

(महाराजश्री द्वारा अनूदित)

१

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं
तदु सुप्तस्य तथैवेति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

जो जागते हुए पुरुषका दूर चला जाता है और सोते हुए पुरुषका वैसे ही निकट आ जाता है, जो परमात्माके साक्षात्कारका प्रधान साधन है, जो भूत, भविष्य, वर्तमान, सन्निकृष्ट और व्यवहित पदार्थोंका एकमात्र ज्ञाता है और जो विषयोंका ज्ञान प्राप्त करनेवाले श्रोत्र आदि इन्द्रियोंका एकमात्र प्रकाशक और प्रवर्तक है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी सङ्कल्पसे युक्त हो

२

येन कर्म्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

कर्मनिष्ठ एवं धीर विद्वान् जिसके द्वारा यज्ञिय पदार्थोंका ज्ञान प्राप्त करके यज्ञमें कर्मोंका विस्तार करते हैं, जो इन्द्रियोंका पूर्वज अथवा आत्मस्वरूप है, जो पूज्य है और समस्त प्रजाके हृदयमें निवास करता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी सङ्कल्पसे युक्त हो

३

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च
यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

जो विशेष प्रकारके ज्ञानका कारण है, जो सामान्य ज्ञानका कारण है, जो धैर्यरूप है, जो समस्त प्रजाके हृदयमें रहकर उनकी समस्त इन्द्रियोंको प्रकाशित करता है, जो स्थूलशरीरकी मृत्यु होनेपर भी अमर रहता है और जिसके विना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी सङ्कल्पसे युक्त हो।

४

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्
परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

जिस अमृतस्वरूप मनके द्वारा भूत, वर्तमान और भविष्यत्सम्बन्धी सभी वस्तुएँ ग्रहण की जाती हैं और जिसके द्वारा सात होतावाला अग्निष्टोम यज्ञ सम्पन्न होता है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी सङ्कल्पसे युक्त हो ।

५

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन्
प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां
तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

जिस मनमें रथचक्रकी नाभिमें आरियोंके समान ऋग्वेद और सामवेद प्रतिष्ठित हैं तथा जिसमें यजुर्वेद प्रतिष्ठित है, जिसमें प्रजाका सब पदार्थोंसे सम्बन्ध रखनेवाला सम्पूर्ण ज्ञान ओतप्रोत है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्बन्धी सङ्कल्पसे युक्त हो ।

६

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्या-
 न्नेनीयतेऽभीशुभिर्व्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं
 तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

श्रेष्ठ सारथि जैसे घोड़ोंका सञ्चालन और रासके द्वारा घोड़ोंका नियन्त्रण करता है, वैसे ही जो प्राणियोंका सञ्चालन तथा नियन्त्रण करनेवाला है, जो हृदयमें रहता है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता और जो अत्यन्त वेगवान् है, मेरा वह मन कल्याणकारी भगवत्सम्वन्धी सङ्कल्पसे युक्त हो ।

(यजुर्वेदसंहिता ३४ । १ से ६

 [आनन्द-

आगे बढ़ो

*

यदि अबतक जीवन का उद्देश्य निश्चित न किया हो तो आज ही, इसी समय कर लो। उद्देश्यहीन जीवन व्यर्थ है। एक ओर चलो, केवल परमात्मा की ओर बढ़ो। जीवन की प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक संकल्प केवल उन्हीं के लिये हो।

●

याद रक्खो, तुम परमात्मा की ओर चल रहे हो। रास्ते की चट्टियों पर ही कहीं न लुभा जाना, बीहड़ रास्ते से घबड़ाकर लौटना नहीं। तुम्हारे साथ एक महान् शक्ति है—वह तुम्हारी सतत रक्षा कर रही है।

●

अनुभव करो, तुम्हें एक महान् प्रकाश घेरे हुए है। तुम्हारे अन्दर–बाहर, आगे-पीछे, उपर-नीचे और नस-नस में वह व्याप्त हो रहा है। अपने ज्ञान, शक्ति और सत्ता को उसमें डुबा दो–डूब जाने दो। फिर जब तुम व्यवहार में उतरोगे तो तुम्हारे जीवन में एक नवीन स्फूर्ति और उल्लास का अनुभव होगा। तुम देखोगे कि तुम्हारा जीवन प्रत्येक क्षण परमात्मा की अधिकाधिक सन्निधि में जा रहा है।

●

यह बात जान लो और सिद्धान्त रूप से मान लो कि ऐसा एक भी क्षण नहीं हो सकता, जिसमें तुम परमात्मा में स्थित न रह सको, चाहे तुम जिस परिस्थिति में हो, भगवान् तुम्हारे साथ हैं और मुस्कराते हुए तुम्हारी सहिष्णुता एवं धैर्य को देख रहे हैं। क्या उनके सामने तुम क्षुब्ध अथवा विचलित हो सकते हो?

●

जिस परिस्थिति में इस समय तुम हो, वह उन्हीं प्रभु का मङ्गलमय वरदान है। इसमें उनके सुकोमल करस्पर्श का अनुभव करो। देखो, इस समय भी उनके कर–कमलों की छत्र–छाया तुम्हारे सिरपर है।

●

जो बीत गया, उसे भूल जाओ। जो आनेवाला है, वह तुम्हारे अधिकारके बाहर है। तुम केवल वर्तमानको सुधारो, कहीं यह क्षण व्यर्थ न बीत जाय। अनुभव करो, आज तुम्हारा दिन सार्थक बीत रहा है। तुम भगवान् की ओर बढ़ रहे हो।

●

जो परम सत्य है—काल जिसका स्पर्श नहीं कर सकता, जो परम पवित्र है—किसी प्रकारकी मलिनता से जो अछूता है, जो परम ज्ञानमय है—अज्ञानका लेश भी जिसमें नहीं है, वह तत्त्व जो 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' है, चारों ओर फैला हुआ हैं—जीव के रूप में, जगत् के रूप में वही प्रकट हो रहा है, मैं उसी में डूब—उतरा रहा हूँ।

●

जो विषमताएँ तुम्हारे सामने हैं—जिनमें तुम उलझ रहे हो, जिनके बारे में तुम अनुभव करते हो कि इनकी जटिलता असीम है—वे कुछ नहीं हैं। तुम परमात्मा के सनातन अंश हो, उनके स्वरूप हो। ऐसी कोई शक्ति नहीं जो तुम्हें बाँध सके। तुम स्वतंत्रता से—परमात्माकी शक्तिका आश्रय लेकर आगे बढ़ो। सफलता अवश्यम्भावी है।

●

ध्यान रहे—जो कुछ तुम देख रहे हो, यह परमात्माका ही स्वरूप है। तुम्हारे हृदय की मलिनता, अभक्ति अथवा भ्रान्ति से ही यह भिन्न रूप में भास रहा है। इसलिये क्रिया की तो बात ही क्या, सङ्कल्प से भी किसी का तिरस्कार मत करो। जो तुम्हारे सामने आवे, उससे इस प्रकारका व्यवहार करो मानो परमात्मा ही तुम्हारे सामने वेष बदलकर आये हों।

●

शान्त रहो, अत्यधिक शान्त रहो। विचार करो कि प्रलय में भी मेरा चित्त अक्षुब्ध रहेगा, क्यों कि वह परमात्मा से युक्त है।

●

जो कुछ परमात्मा की ओर से आये, प्रेम से उसका स्वागत करो। चित्त में अपनी ओर विचारों को न ठूँसकर—चित्त के उद्गम में से उन्हें उभरने दो। तुम्हारा एक-एक विचार परमात्मा का सन्देश लायेगा। देखो तो सही, तुम्हारे हृद्देशस्थित परमात्मा क्या कहते हैं।

●

ऐसा समय आता है, जब चित्त-वृत्तियाँ अन्तर्मुख हो जातीं हैं, बाहर की स्फुरणाएँ बन्द और श्वास की गति धीमी। बड़ी सावधानी के साथ उस समय परमात्मा की ओर देखो। तुम उनका प्रेम-सङ्गीत सुन सकोगे।

●

अनुभव करो—मेरा जीवन रहस्य का जीवन है और उसका स्वरूप है प्रेम। मेरा हृदय अनन्त प्रेम की क्रीड़ा-स्थली है। मैं विशुद्ध प्रेम हूँ, मेरे जीवन में प्रेम विकसित हो रहा है। प्रेम—विशुद्ध प्रेम, जो कि आत्मिक है, जिसमें शारीरिक मोह की गन्ध भी नहीं है।

●

मैं शरीर नहीं हूँ, मैं शुद्ध आत्मा हूँ।-शरीर—अपवित्र शरीर लेकर परमात्मा के राज्य में प्रवेश कैसे होगा? मैंने शरीर का मोह छोड़ दिया है, तभी तो मैं परमात्मा की सन्निधि का अनुभव कर रहा हूँ।

●

दृढ़ निश्चय करो—मेरा मन पवित्र हो रहा है। दुर्विचार, दुर्भाव, दुर्गुण, दुराचार आदि की वृत्तियाँ अब उसके अन्दर प्रवेश नहीं कर सकतीं। तभी तो उसके सामने एक अलौकिक दिव्यता प्रकट हो रही है।

●

निश्चल भावसे विश्वास के साथ मन को आज्ञा दो—रे मन, तू मेरा सेवक है। मेरी सत्ता और चेतना से तेरा जीवन है। तू मेरी एक स्वीकृतिमात्र है। मेरी आज्ञा मान और जैसे मै चाहूँ वैसे रह। इधर-उधर किया तो मै तुझे नष्ट कर दूँगा।

●

स्थिर शरीर और अचञ्चल मन से दृढता के साथ बैठो। निश्चय करो कि अब एक क्षण के लिये भी परमात्मा के अतिरिक्त और किसी वस्तु को चित्त में स्थान नहीं दूँगा। मेरा सम्पूर्ण जीवन परमात्मा के लिये है।

●

ढूँढ़ निकालो कि जगत् की कौन-सी वस्तु इतनी आकर्षक है कि वह तुम्हें परमात्मा की ओर न जाने देकर जगत् में खींच लाती है। एक बार उसे उलट-पलटकर देखो। वह इतनी तुच्छ है कि एक बार विवेक की दृष्टि से पूर्णतः देख लेने पर फिर उसका प्रलोभन नहीं रहेगा।

●

विचार करके देखलो—संसार के लोग जिसे बड़े महत्त्व की वस्तु समझते हैं, वह सर्वथा सारहीन है। जिसके प्रति जिसकी वासनाओं का झुकाव रहता है, वह उसीको बड़ा मान लेता है। जब तुम मोह का पर्दा फाड़कर देखोगे तब जान सकोगे कि वह तो बच्चों के खिलौने से अधिक महत्त्व नहीं रखता। तुमने निश्चयपूर्वक वह परदा फाड़ दिया है, ऐसा अनुभव करो।

●

यदि सचमुच तुमने अपने जीवन को महान् बनाने का निश्चय कर लिया है तो तुम्हारी महत्ता में कोई सन्देह नहीं; परन्तु उसके लिए अपेक्षित साधन-सामग्री एकत्र कर ली है क्या ? एक बार अपने सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य और निर्भीकता की परीक्षा कर लो। साधन जुट जाने पर साध्य स्वयं तुम्हारी सेवा करने लगेगा।

●

तुम जो चाहते हो, उसके एकमात्र केन्द्र पर दृष्टि जमाओ, और देखो कि उस अनन्त गुणों के भण्डार में से जो कुछ तुम चाहते हो, उसकी असीम धारा प्रवाहित होकर तुम्हें आप्यायित कर रही है।

●

तुम जिसकी श्रेष्ठता का निश्चय किये हुए हो, उसका बार-बार स्मरण करो। उसकी श्रेष्ठता का स्मरण ही प्रार्थना है। अवश्य ही वह तुम्हारे अन्दर निवास करेगा। प्रार्थना की ऐसी ही शक्ति है।

●

तुम जो अब तक अपने लक्ष्य से दूर रहे हो, इसका एकमात्र कारण यही है कि तुम अपने लक्ष्य को पहचानते नहीं हो। यदि तुम उसे पहचान सको तो अभी वह दूरी समाप्त हो जाय। इस दिशा में और आगे बढ़ो।

●

यदि तुम यह सोचते हो कि अभी तो प्रतिकूल स्थिति है, अनुकूल स्थिति आने पर सब कर लूँगा, तो तुम भूल रहे हो। क्या पता आगे प्रतिकूलता बढ़ जाय। जो अनुकूल स्थिति की प्रतीक्षा में बैठा रहता है, वह घर आयी लक्ष्मी को खो देता है।

●

यह स्मरण रखने की बात है कि अनन्तशक्ति हमारे पीछे है—हमारी सहायक है; छोटी मोटी परिस्थितियाँ तो यों ही आती-जाती रहती हैं। तुम केवल अपने एक-एक क्षण को परमात्मा के साथ जोड़ते रहो।

●

जिसमें आत्मविश्वास है, वही ईश्वर पर भी विश्वास कर सकता है। तुम यह निश्चय करो कि बाघ के मुँह में और साँप से डँसे जाने पर भी मैं भगवत्प्रेम और कृपा का एकरस अनुभव करूँगा।

●

भगवान् प्रेमपरवश हैं—उनकी मूर्ति कृपामयी है। वे माता से भी अधिक दयालु हैं। अनादिकाल से अपनी गोद में रखकर उन्होंने सारे जगत् को, जीवों को और मुझे खिलाया है। एक क्षण के लिये भी उन्होंने मुझे अपने से अलग नहीं किया। जब-जब मैंने अपराध किया है, उनके सामने ही और उनके देखते-देखते ही; परन्तु उन्होंने उस पर ध्यान न देकर अपनी कृपा की पराकाष्ठा कर दी है—मैं तो बहा जा रहा हूँ उनकी कृपाके समुद्र में।

●

हे प्रभो, तुम कैसे हो—यह मैं नहीं जानता। तुम जैसे हो, वैसे ही रहो। ये मेरे शरीर, इन्द्रिय, मन, आदि, जिन्हें मैं अपना मान रहा था, अब तुम्हें समर्पित करता हूँ। इन्हें अपनाओ, और ये मेरे हैं ऐसी भावना चित्त में कभी न आने दो।

●

प्रभो! मैं समर्पण करनेवाला ही कौन हूँ? जैसा मैं कभी था, अब हूँ, या आगे होऊँगा—सब रूपों में तुम्हारा ही तो हूँ। मैं अपने को कुछ मान बैठा था—अब इस अपराध की पुनरावृत्ति न हो प्रभो!

●

शरीर प्रभु की सेवा में, वाणी उनके नाम, गुण और लीला के गान में, मन उनके स्मरण में संलग्न रहे। आँखें जहाँ जायँ, उनकी रूप-माधुरी का पान करके छक जायँ। निश्चय करो—दृढ़ चित्त से कि सब कुछ भगवान् ही हैं, उनके अतिरिक्त और कोई सत्ता नहीं। उससे एकत्व का अनुभव करना ही जीवन की पूर्णता है।

इच्छा आनन्द की अनुभूति में प्रतिबन्ध है।

*

बात कुछ वर्षों की ही है। गरमी के दिन थे। मैं स्वर्गाश्रम में था। नित्यकी भाँति सत्संग-गोष्ठी उठने पर मैं सायंकाल गंगातट पर चला जाया करता था। एक दिन वालुका-पुलिन पर बैठा था। एक सज्जन आये। बड़ी नम्रता से उन्होंने प्रणाम किया और उदास-से पासमें ही बैठ गये। मैंने उनसे कुशल क्षेम और साधनसम्बधी चर्चा की तो वह बोले—'भगवन्! दस वर्ष हो गये भजन करते हुए; परन्तु जीवन में किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं हुई। कोई सफलता नहीं मिली। मुझे कोई लौकिक सुख भी नहीं चाहिये। मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि ईश्वर के अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं चाहिये।'

मैंने पूछा—'तुम कैसा ईश्वर चाहते हो?'

'केवल आनन्दस्वरूप परमात्मा।'

'मैं जो कहूँगा, वह करोगे?'

'जी हाँ!'

'अच्छा, तो बैठो! तुम आनन्द की इच्छा भी छोड़ दो।'

'जो आज्ञा ! छोड़ दी।'

इसके पश्चात् वह शान्त हो गये। समाधिस्थ घंटों बैठे रह गये। उनके मुखपर एक दिव्य आभा छा गई। आनन्द मानों रोम–रोम से फूटा पड़ रहा था।

उठनेपर उन्होंने बताया कि 'जैसा सुख, जैसा अनिर्वचनीय आनंद आपकी कृपा से मुझे आज आया है वैसा अब तक कभी नहीं आया। इस सुख के आगे मैं संसार के किसी भी सुख को कुछ नहीं गिनता।'

किसी वस्तु की इच्छा और अनुभूति–दोनों एक कालमें नहीं होते। इच्छा ही आनन्द की न्यूनता या अभाव का सूचक है। उसके त्याग से ही आनन्द की अनुभूति होती है।

धर्म-नियन्त्रित जीवन

*

कोई मनुष्य चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो अपनी सब इच्छाओं को पूर्ण नहीं कर सकता ।

(i) भोग की इच्छाएँ ।
(ii) संग्रह की इच्छाएँ ।
(iii) कर्म की इच्छाएँ ।

ऐसी स्थिति में आवश्यक है, कि इनमें छाँट की जाय ।

(i) कौन-कौन पूरी की जायँ ।
(ii) कौन-कौन छोड़ दी जायँ ।
(iii) किन्हें प्राथमिकता दी जाय ।
(iiii) किस एक के पूर्ण होने से और सब पूर्ण हो जाती हैं या मिट जाती हैं ?

इस विवेक से धर्म का प्रारम्भ होता है, बिना इच्छाओं में काट-छाँट या नियंत्रण से मनुष्य जीवन चल नहीं सकता, इसलिए संग्रह, भोग एवं कर्म पर विवेकानुसारी धर्म का नियंत्रण होना आवश्यक है ।

●

कर्म, भोग और संग्रह की इच्छाओं की मूल प्रेरणा एवं उद्देश्य के सम्बन्ध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि उन्हें भी साधारण रूप से तीन भागों में बाँट सकते हैं।

(i) जीवन सम्बन्धी—मृत्यु, रोग, भूख, ठंड, निर्बलता आदि से बचने के लिये सामग्रियों की आवश्यकता।

(ii) ज्ञान सम्बन्धी—कहीं मूर्ख न बनना पड़े, इसके लिये ग्रन्थ, पाठशाला, पर्यटन, चिन्तन, सत्संग आदि ज्ञान-रक्षक एवं वर्द्धक सामग्री।

(iii) आनन्द सम्बन्धी—इन्द्रिय और मन को अभाव, दुःख, चिन्ता आदि से बचाकर प्रफुल्ल-प्रसन्न करने के लिये सामग्री।

●

इन तीनों प्रकारों की पिण्डीभूत रूपरेखा बतलायी जाय तो यों कहा जायगा—

(i) हमें अविनाशी जीवन चाहिये।
(ii) हमें सर्वोपरि ज्ञान चाहिये।
(iii) हमें अविनाशी और ज्ञात होता हुआ आनन्द चाहिये अर्थात् हमें ईश्वर चाहिये।

●

धर्म-नियन्त्रित जीवन

*

कोई मनुष्य चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो अपनी सब इच्छाओं को पूर्ण नहीं कर सकता ।

(i) भोग की इच्छाएँ ।
(ii) संग्रह की इच्छाएँ ।
(iii) कर्म की इच्छाएँ ।

ऐसी स्थिति में आवश्यक है, कि इनमें छाँट की जाय ।

(i) कौन-कौन पूरी की जायँ ।
(ii) कौन-कौन छोड़ दी जायँ ।
(iii) किन्हें प्राथमिकता दी जाय ।
(iiii) किस एक के पूर्ण होने से और सब पूर्ण हो जाती हैं या मिट जाती हैं ?

इस विवेक से धर्म का प्रारम्भ होता है, बिना इच्छाओं में काट-छाँट या नियंत्रण से मनुष्य जीवन चल नहीं सकता, इसलिए संग्रह, भोग एवं कर्म पर विवेकानुसारी धर्म का नियंत्रण होना आवश्यक है ।

●

कर्म, भोग और संग्रह की इच्छाओं की मूल प्रेरणा एवं उद्देश्य के सम्बन्ध में विचार करने पर ज्ञात होता है कि उन्हें भी साधारण रूप से तीन भागों में बाँट सकते हैं।

(i) जीवन सम्बन्धी—मृत्यु, रोग, भूख, ठंड, निर्बलता आदि से बचने के लिये सामग्रियों की आवश्यकता।

(ii) ज्ञान सम्बन्धी—कहीं मूर्ख न बनना पड़े, इसके लिये ग्रन्थ, पाठशाला, पर्यटन, चिन्तन, सत्संग आदि ज्ञान-रक्षक एवं वर्द्धक सामग्री।

(iii) आनन्द सम्बन्धी—इन्द्रिय और मन को अभाव, दुःख, चिन्ता आदि से बचाकर प्रफुल्ल-प्रसन्न करने के लिये सामग्री।

●

इन तीनों प्रकारों की पिण्डीभूत रूपरेखा बतलायी जाय तो यों कहा जायगा—

(i) हमें अविनाशी जीवन चाहिये।

(ii) हमें सर्वोपरि ज्ञान चाहिये।

(iii) हमें अविनाशी और ज्ञात होता हुआ आनन्द चाहिये अर्थात् हमें ईश्वर चाहिये।

●

जो लोग कहते हैं कि हम ईश्वर को नहीं मानते वे भी ईश्वर को ही चाहते हैं और जिस वस्तुको चाहते हैं उसका अस्तित्व अनजान में ही कहीं-न-कहीं अपने अन्तस्तल में स्वीकार करते हैं। अभिप्राय यह कि आस्तिक, नास्तिक— सभीं, जान में या अनजान में, ईश्वर को ही चाह रहे हैं। उसकी प्राप्ति सम्भव मानते हैं और अपने में उसकी प्राप्ति की योग्यता स्वीकार करते हैं।

●

धर्म के अनुसार कर्म करने से पाप-कर्म नहीं होते हैं। कर्ता का तमोगुण दूर होता है। देह से भिन्न एक आत्मा नामकी वस्तु है जो स्वर्ग, नरक एवं पुनर्जन्म को प्राप्त होती है—यह विश्वास दृढ़ होता है और इस प्रकार हम अन्तःकरण शुद्धि और विवेक की ओर अग्रसर होते हैं।

●

भगवान् की या भगवद्भाव से किसी की भी शास्त्रोक्त उपासना करने से संसार की वासना, आसक्ति आदि दोष दूर होते हैं और भगवत्तत्त्व का ज्ञान बढ़ता है।

जीवनोपयोगी

*

दुःख आये तो सह लेना, घबराना नहीं। सुख आये तो फूलना नहीं कि वह स्थायी नहीं। किसी के प्रति आसक्ति मत करो। सुख से सटो मत, दुःख से हटो भी मत। जो आये, आने दो, जाये तो जाने दो।

●

समय बहुत थोड़ा है, जो कुछ करना हो सो कर लो। न जाने फिर अवसर आये-न-आये।

●

मार्ग दो ही हैं—एक भक्ति और दूसरा धर्म का। किसी एक में तो निष्ठा करनी ही पड़ेगी। जिस किसी भी मार्ग पर पूर्णतासे चलोगे, अपनी इच्छाओंको कुचल डालना पड़ेगा। इच्छा दोनों ही मार्गोंमें नहीं चल सकती। यों भी कह सकते हैं कि अपनी 'इच्छा' नामकी कोई चीज़ ही नहीं रहती।

●

अपने आस-पास के सभी व्यक्तियों की कुछ-न-कुछ सेवा अपने शरीर से अवश्य होनी चाहिये। दूसरों से अपने लिये उसकी अपेक्षा न हो। तुम्हारा कर्म स्वावलम्बन को पुष्ट करे।

●

धर्म के नाम पर शरीर को कष्ट नहीं देना चाहिये। परस्पर सद्भाव से रहना चाहिये। प्रेम ही जीवन का सुख है। वह रहे तो सब कुछ प्राप्त है।

●

जैसा बनना चाहते हो, वैसा ही चिन्तन करो।

●

संसार में ऐसा कौन है जिसे सदा दुःख ही दुःख मिला हो; ऐसा कोई भी नहीं जो सदैव सुखी ही रहा हो। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन। दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख।

●

अपने पास ख़ुशी का एक ख़ज़ाना होना चाहिये। जो भी अपने सम्पर्क में आये, उसे सुख की भेंट देकर ही विदा करो।

●

दुःख को कभी भी स्वीकृति न दो। सब दुःखों का अन्त सुख ही है। पता नहीं, कौन-सा दुःख किस सुख की भूमिका हो!

●

पाँच बातें याद रखना :—

१. शरीर से सेवा श्रम।

२. इन्द्रियों से यथाशक्ति संयम।

३. मन से सबके प्रति सद्भावना।

४. बुद्धि से सोच-समझकर कोई काम करना, और

५. कभी किसी बात का अभिमान न करना।

●

जिनके कारण अपनी इच्छापूर्ति में बाधा पड़ती है, उन पर क्रोध न करके, किसी भी उपाय से उन्हें सन्तुष्ट कर, उन से मित्रता कर लेनी चाहिये।

●

मनुष्य शरीर की सफलता है—पवित्र जीवन, भगवद्भजन और सर्वदा प्रसन्न रहना। सुखी रहो और सामनेवाले को सुख से भर दो।

●

अपने हृदय को इतना मीठा कर लो कि आस-पास के सब मीठे हो जायँ। मुस्कराके बोलो। कोमलता का व्यवहार करो। सब को सुख दो। जिस से सुख मिलता है, उसे सब प्यार करते हैं। दुःखी पर दया तो आती है, उस से प्रेम नहीं होता। अपने को सुखरूप रखो, जिससे सब प्यार दें।

●

स्वास्थ्य, सेवा-भाव, संयम, सम्मान और समय कभी नहीं खोना चाहिये। सद्भावना ही भक्ति का सर्वस्व है। अपना हृदय स्नेह-सुधासे सराबोर रहे। किसी के प्रति दुर्भावका विष न आये। विष पहले दिल को और दिलवाले को ही मारता है। दिल में तो बस, दिलदार रहे।

●

परस्पर विश्वास की भावना ही सुख-शान्ति की कुञ्जी है। अपने मन को संशयग्रस्त बनाकर संसार में कभी भी कोई सुखी नहीं हुआ।

●

तुम्हारे हृदय में प्रसन्नता का समुद्र उमड़े। उसकी तरङ्गें उछल-उछल कर उन सब को तर कर दें, जो तुम्हारे आस-पास हों।

●

सच्चा सौन्दर्य मन की पवित्रता और चरित्र की उज्ज्वलता है। प्रेम सबसे बड़ा सौन्दर्य है। उसीसे तुम्हारा मन परिपूर्ण रहे।

●

जिसके कारण अपनी इच्छा—पूर्ति में बाधा पड़ती है, मुझे उन पर क्रोध नहीं आता। उनसे तो दोस्ती करने का मन होता है। यदि वे किसी भी उपाय से सन्तुष्ट हो जायँ, मैं खुशी-खुशी कर सकता हूँ।

●

थोड़े के लिये बहुत हानि ठीक नहीं।

●

जहाँ क्रोध है, वहां भगवान् नहीं। भगवान् को बुलाना है? भई, क्रोध को हटाओ।

●

चित्त की विपरीत अवस्था, विवेकवती बुद्धिका अभाव ही मोह है। वह जितना अधिक व्यक्ति में होगा, उतना ही अधिक मनुष्य दुःखी होगा। अतः यदि सुखी रहना चाहते हो तो मोह को सर्वथा तिलाञ्जलि दे दो।

●

गिरना दोष नहीं, गिरकर न उठना ही दोष है। गलतियाँ मनुष्यसे होती ही हैं, उन्हें सुधार लेना चाहिये।

●

हमारे यहाँ देहात में कहावत है—'पंड़ाइन, सुभ बोला' (पंडितानीजी ! शुभ बोलो)।

किसी को भी कभी भी ऐसी बात न कहे कि जिससे सुनने वाला व्यथित हो जाय, या उसका अहित हो। 'तेरा सत्यानाश हो' न कहकर 'तेरा भला हो' कह सकते हो।

हमारे सिन्धी साईं किसी भी शब्द के आदि में लगे हुए 'कु' को 'सु' कहकर बोलते थे, जैसे, 'कुरसी' को 'सुरसी', 'कुत्सित' को 'सुत्सित' आदि। महाराज युधिष्ठिर भी दुर्योधन को 'सुयोधन' सम्बोधित करते थे।

●

अपना व्यवहार सबके साथ मधुर रहे। तब भगवान् सोचेंगे—'चलें, इससे थोड़ी-सी मिठास हम भी ले आयें।' और यदि व्यवहार किसी से कटु और किसी से मृदु हुआ तो प्रभु अपना निश्चय ही बदल देंगे, सोचेंगे, 'क्या जाने, यह कब कड़वा हो जाय !'

●

दुःख को कभी स्वीकार न करना और सुख को बाँधकर न रखना। जो तुम्हारे पास आये उसका हँसकर, प्रसन्नता से स्वागत करना, तुम प्रेममय बन जाओगे।

●

दुनियां की जानकारी जितनी कम होगी, मन उतना ही हलका भी रहेगा। संसार भी उसमें कम आयेगा और वह प्रसन्न भी अधिक रहेगा।

●

जो किसी को भी पापी न समझे ओर न किसी में पाप-भावना करे, उसका हृदय पवित्र है। कोई कैसा ही हो, अपना मन क्यों बिगाड़े—

●

तेरे भावै जो करौ भलो बुरो संसार।
नारायण तू बैठके अपनो भवन बुहार॥

●

कभी तुमने किसी की निन्दा की है? और उसकी सज़ा अपने को दी है? नहीं, तो कोई दूसरा तुम्हारी निन्दा करता है तब उसपर कैसी नाराज़ी और उसे कैसी सज़ा?

●

जिसको कुछ पाना है, उसे कुछ करना है। जिसमें कामना है, उसमें क्रिया भी है। इच्छा के साथ प्रयत्न जुड़ा हुआ है।

●

व्यस्तता में सुख-दुःख का पता नहीं चलता। स्मृति (अतीत) और कल्पना (भविष्य) वर्तमान को भुला देती हैं।

●

एक महात्मा शरीर त्याग रहे थे। उनके भक्त ने प्रार्थना की—'भगवन्! कोई आदेश!'

महात्माने पहले तो मना किया। फिर पूछा, 'अच्छा, बतलाओ, मेरे मुखमें दांत हैं या नहीं?'

'नहीं।'

'और जीभ?'

'सो तो है।'

'अच्छा, तो मेरा यही सन्देश है कि नम्र बनो। जो कठोर होता है, वह पहले नष्ट होता है। कोमल बचा रहता है।'

●

भगवान् का भजन-पूजन प्रातःकाल जल्दी उठकर, जब कि घर के सभी लोग सोये रहें, कर लेना चाहिये। उस समय अवकाश भी रहता है और मन भी शान्त रहता है; क्योंकि वासनाएँ भी रात में सो जाती हैं और धीरे-धीरे सूर्योदय के साथ ही बढ़ने लगती हैं। रात में देर तक जागकर भजन करने की अपेक्षा ब्राह्म मुहूर्त में उठकर करना कहीं श्रेष्ठ है।

●

सांसारिक बातों के लिये झूठ बोलनेवाला परमार्थ के लिये भी झूठ बोल सकता है; परन्तु जो कभी किसी अवस्थामें भी असत्यभाषण नहीं करता, उसे परमार्थ के लिये भी नहीं करना चाहिये।

●

दो ही इन्द्रियाँ प्रबल हैं—जननेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय। यह जिसके अधीन हैं, वही जितेन्द्रिय है।

●

हमेशा खुश रहना। हीन कभी मत बनना। शरीर घरा रहने दो कुटुम्बमें। मन को तो कोई पकड़ नहीं सकता। मन ही तो सब कुछ है। उससे ईश्वर का खूब चिन्तन करो।

●

क्रोध तो असुर है। उसे पास मत फटकने देना। कभी आ ही जाय तो कोई ठण्डी, मीठी चीज़ खिलाकर उसे विदा कर देना या कमरा बन्द करके रो लेना। उसे दया आ जायगी और वह चला जायगा।

●

ब्रह्मा कमल पर निवास करते हैं, विष्णु क्षीर सागर में शेष-शैया पर और शिव जी हिमालय में। अर्थात् भगवान् का निवास स्वच्छ, शीतल, स्निग्ध और कोमल स्थान में है। भगवान् को बुलाना चाहते हो तो अपने हृदय को ऐसा बनाओ। जिस हृदय में क्रोध की भट्ठी जल रही हो, वहाँ भगवान् नहीं आते।

●

दूसरों के गुणों का चिन्तन करो, गुण तुम्हारे हो जायँगे। यदि उनके दुर्गुणों की ओर देखोगे तो वही तुम्हारे हृदय में आ बसेंगे।

●

जैसा चिन्तन वैसा चित्त। मनुष्य का मन उसकी आँख और मुख से झाँकता है। इसलिए मन में सद्विचारों को आश्रय दो—

'यच्चित्तस्तन्मयो मर्त्यः गूढमेतत् सनातनम्।'

●

एक बार भी यदि आचरण नीचे की ओर गिरा, तो वह गिरता ही चला जायगा। भागीरथी हिमालय से गिरती है तो गिरती ही चली जाती है—

'विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।'

●

गुरु ने जो बतलाया है, वह करो; वे करते हैं, सो नहीं। वे तो कई भूमिकाएँ पार करके उस स्थिति में पहुँचे हैं।

●

भोग की अधिकता से रोग होते हैं। बुद्धिभ्रष्ट होती है, स्वभाव बिगड़ता है। सुख है सादगी में। जीवन निर्वाह करो कम से कम में।

●

एक बार गांधीजी कस्तूर बा से रुष्ट हो गये। नाराज़ होकर उन्हें घर से बाहर निकाल दिया और स्वयं भी कहीं कार्यवश चले गये। लौटकर आये तो वे दरवाज़े पर ही बैठी मिलीं।

'गयी क्यों नहीं' पूछने पर कस्तूरबा ने कहा—

'तुम तो पुरुष हो, कहीं भी जा सकते हो। मेरा तो बस, यही एक घर है। इसे छोड़कर कहाँ जाऊँ?'

उसी समय से गांधीजी ने सत्याग्रह करना सीखा।

●

वासना पूरी होने के बाद तथा धन-प्राप्ति के बाद भले ही भजन हो जाय; परन्तु वासना-पूर्ति से पहले और धन खोने के बाद तो वह कभी हो ही नहीं सकता। इन दोनों ही अवस्थाओं में मन अशान्त रहता है।

●

दण्ड देने का अधिकारी वह है जिसने कभी भी कोई अपराध न किया हो।

एक दुराचारिणी स्त्री को जब समाज ने पत्थर मारकर प्राण-दण्ड देने का निश्चय किया, तो ईसा मसीह ने कहा—

'पहला पत्थर वह मारे जो सचमुच आजीवन निष्पाप हो।' सबके उठे हुए हाथ नीचे गिर गये।

●

यदि मन में कभी किसी बात का अभिमान आये तो उसकी दिशा मोड़ दो प्रभु की ओर। वह कुछ ऐसा हो—

१. अहाहा ! मेरे इष्टदेव मुझ पर कितनी कृपा और कितना प्रेम करते हैं !

२. मेरा मन कितना अच्छा है कि वह इष्ट देव के बारेमें इतना सोचता है !

३. मेरी आदतें कितनी अच्छी हैं कि अनजान में भी मैं धर्म के विरुद्ध कुछ नहीं करता।

४. दूसरों के दुर्गुण देखकर मै उन्हें सह लेता हूँ, परन्तु अपने नहीं।

मेरे दोषों को देखकर कोई प्रसन्न होता है, तो मैं भी क्यों न खुश हो लूँ ? बिना किसी प्रयास के मुझे देखकर कोई प्रसन्न होता है, इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है—ऐसा सोचना चाहिये।

●

गार्हस्थ्य और परमार्थ, दोनों साथ-साथ चल सकते हैं। यह दोनों धर्म हैं। यह तो दो तरहकी सीढ़ियाँ हैं, पड़ाव नहीं।

●

पानी में डूबते समय प्राण बचाने की जैसी व्याकुलता और चेष्टा होती है, वैसी ही ईश्वर को पाने के लिये होनी चाहिये।

●

अभिमान आये तो अपने से बड़े की ओर देखो। इच्छाएँ सताएँ तो छोटों की ओर देखो। जैसी भी परिस्थिति आये, उसी में सन्तोष करो। अपनी प्रसन्नता वस्तु में मत रक्खो।

●

दुनियां की चर्चा से राग-द्वेष होगा और भगवान् की चर्चा करोगे तो राग-द्वेष मिटेगा, सुख-शान्ति मिलेगी।

●

यदि तुमने ग़लती की है तो उसकी सज़ा चुपचाप सह लो, तुम्हारा प्रायश्चित्त हो गया। यदि तुमने नहीं की तो भी सह लो, तुम्हारी तपस्या हो गयी।

●

दूसरे को दुःख पहुँचाये बिना कोई भी भोग सम्भव नहीं। भोग से राग तथा और-और की भूख बढ़ती है।

●

दुःख की अस्वीकृति और सुख का वितरण ही जीवन की सर्वोत्तम प्रणाली है। सबको सुख दो, तुम्हें सुख मिलेगा; उसी दिन, उसी क्षण मिलेगा। इसलिये बाँटो, अन्यथा सुख के बाद दुःख तो है ही। अपने में दुःखीपने का अभिमान मत लाओ। दुःख, यह सोचकर कि यह तो मुझे स्वीकार ही नहीं करता, दूसरे को ढूँढ़ता-ढूँढ़ता अपने आप चला जायगा।

कृपा

*

जब शिष्य की श्रद्धा और गुरु का अनुग्रह—दोनों का शाश्वत समागम होता है, तब भगवान् का अविर्भाव होता है।

●

जब साधक भगवान् के लिये अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य-श्रम का विनियोग कर चुकता है, स्वयं शक्तिरहित हो जाता है, तब भगवान् की शक्ति चक्रवर्तिनी कृपा देवींका अवतरण होता है।

●

जिस पर भगवान् की कृपा है, जो उसका अपना है, उसके लिये आश्चर्य और असम्भव क्या है?

●

भगवान् को जब अपने में अपना दिल नहीं मिलता, तब वे उसे ढूँढ़ते हुए भक्त के पास आते हैं और उसको अचेत से सचेत करते हैं तथा भीतर से बाहर निकलकर दर्शन देते हैं। असल बात यह है कि भक्त अपने को साधनहीन देखकर जब अपनी विवशता से तड़पने लगता है, तब, कहीं उसके हृदय की धड़कन बन्द न हो जाय—यह सोचकर भगवान् अपना आवरण उतार देते हैं।

●

भगवान् भगवान् ही हैं। उनका नाम श्रीराम रखो या श्रीकृष्ण। चाहे उनका मुकुट सीधा खड़ा हो या बांकी अदाके साथ बायें अथवा दाहिने लटक रहा हो। वे व्रज के वन-निकुञ्जमें गायें चरा रहे हों। गोपियों से छेड़छाड़ कर रहे हों, या धूलिमें लोट रहे हों, अथवा श्री अवध के दरबार में राजसिंहासन पर गम्भीर भावसे बैठकर राज्यकार्य का संचालन कर रहे हों। नाम, पोशाक, काम या गुणों के प्रकटीकरण के भेद से भगवान् में भेद नहीं होता। वे खेलकर, खिलाकर, डाँटकर, पीटकर, नाचकर, गाकर हर हालत में जीवों पर अनुग्रह-दृष्टि की वृष्टि करते रहते हैं।

●

भक्त को प्रत्येक क्रिया में भगवान् की कृपा के ही दर्शन होते हैं।

●

भगवान् की कृपा और प्रेम अहर्निश एकरस सब पर बरस रहे हैं। सतत सावधान रहकर अपने-आपको और सारे संसार को उससे आप्लुत और आप्यायित अनुभव करना चाहिये। जैसे व्यास (वक्ता) ग्रन्थ के प्रत्येक शब्द का भाव अपने अनुकूल निकाल लेता है, वैसे ही प्रत्येक घटना का अभिप्राय प्रसाद और अनुग्रहरूप ही निकालना चाहिये। संसार में केवल वही दुःखी है जो प्रभुके आनन्द-मय कर-कमलों से सम्पन्न घटना की व्याख्या प्रतिकूल करता है। अपने हृदय को सर्वदा रसमय, मधुमय बनाये रखना चाहिये।

●

सब आत्मा है—क्रोध किस पर ?

क्या स्थाणु में प्रतीयमान चोर पर भी लाठी-प्रहार ?

सब भगवान् या उनकी लीला है। प्रत्येक घटना ही प्रेमपूर्ण है।

सब प्रकृति का खेल है। इसमें अच्छा-बुरा क्या ?

अपने स्वभाव से विवश लोगोंकी चेष्टा पर ध्यान ही क्या ?

हमारा अन्तःकरण इन विचारों को आत्मसात् कर चुका है। अब उसमें क्रोध असंभव है।

मैं जीवन भर अब कभी क्रोध नहीं करूँगा– ऐसा दृढ़ निश्चय है।

अनुकूलता-प्रतिकूलता के भाव अज्ञानमूलक हैं--यह क्रोध की नींव है।

जो मेरे मन और शरीरके प्रतिकूल क्रिया करता है, वह मुझे उनसे ऊपर उठने की प्रेरणा देता है। जहाँ कोई निशाना लगायेगा, मैं उससे ऊपर हूँ।

क्या यह घटना इतनी महत्त्वपूर्ण है कि मैं अपने चित्त का प्रसाद खो दूँ ?

मुझे कोई कामना नहीं है, फिर किस कामना की पूर्ति में बाधा होने पर क्रोध करूँ ?

भक्ति

*

यह निश्चित है कि ईश्वर के लिये किया हुआ एक भी संकल्प व्यर्थ नहीं जाता; क्योंकि वह एक चेतन कल्पवृक्ष है और अपने प्रेमी की सब इच्छाओं को जानता तथा उन्हें पूरी करने का सामर्थ्य रखता है। उस का हृदय बहुत ही कोमल है। प्रेमी की प्रत्येक प्रार्थना पूर्ण होगी।

●

कृष्ण की शरण ले लो। हर जगह तुम्हें मदद मिलेगी। विश्वास और निष्ठा से जब तुम उन्हें पुकारोगे, वे अवश्य आयँगे।

●

अपने प्राण-प्यारे आनन्द मुकुन्द की स्मृति और सेवा पूजा हो तो और कुछ नहीं चाहिये। अपना देवता अपने मन में रहे। उसकी सेवा-पूजा ही अपनी साधना हो।

●

पारस्परिक प्रेम से सब काम बन जाते हैं। कृष्ण की सेवा और प्रसन्नता भी सुलभ हो जाती है। मन में उद्वेग भरा हो तो भगवान्‌के भजन में भी बाधा पड़ती है। जिसको भी तुम आनन्द दोगे और सेवा करोगे, वह तुम्हारे अनुकूल हो जायगा। ज़िद और दबाव से सब काम बिगड़ जाते हैं।

●

 [आनन्द-

किसी भी देश और वेश में रहो, अपने हृदय को सुखस्वरूप परमात्मा से तर रक्खो। श्रीकृष्ण सर्वदा रक्षक हैं।

●

यदि मनुष्य के मन में कोई दुःख, चिन्ता या भय हो तो उसे भगवान् का स्मरण करना चाहिये; मंगल होगा।

●

इस जीवन को सुखी और शान्त बनाने के लिये श्रीकृष्ण-प्रेम ही सर्वोपरि है। मुकुन्द ही आनन्द की एकमात्र निधि है। सर्वदा भजन करना।

●

अपने तो ठाकुरजी के इशारे पर नाचनेवाले हैं। जैसे, जब जहाँ रखें, रहने को तैयार। व्रज के प्रेमी कहते हैं—

'जैसे राखहु, वैसे रहौं'। अपने प्रियतम प्रभु की इच्छा से नरक में रहना भी अच्छा है। अपनी वासना-पूर्ति के लिये स्वर्ग में रहना भी स्वार्थ ही है।

●

भोजन का छोटा भाई भजन। जैसे भोजन बिना नहीं चलता, भजन बिना भी न चले। भजन अपनी खुराक बने, जीविका बन जाय। काल का लोप भले हो जाय, भजन न छूटे। जगह, समय, आसन—सब बदल जायँ, पर भजन न छूटे।

●

विश्वास—प्रभुका मुझपर अनन्त प्रेम है ।
आशा—वे एक दिन अवश्य मिलेंगे ।
लालसा—जब वे मिलेंगे, तब क्या-क्या होगा ? उनकी
कैसे-कैसे पूजा की जायगी ।
उत्कण्ठा—उस समय, सुयोग के लिये प्राण लालायित हैं,
प्यासे हैं, व्याकुल हैं ।
तन्मयता—मन उन्हीं में डूबा रहता है ।
वैराग्य—और कुछ सुहाता नहीं ।

●

ईश्वर की पूजा के तीन प्रकार—

१. हृदय में राग-द्वेष का अभाव
२. वाणी का माधुर्य, और
३. शरीर से सदाचरण

●

एक दिन विहारीजी का दर्शन करने गये । भोग आ जाने से मन्दिरके पट बन्द हो गये । बैठना पड़ा । अब हमें प्रसन्न होना चाहिये या दुःखी । यदि हम यह सोचें-हमारे लिये ही पट बन्द हो गये, तो दुःख होगा और यदि यह सोचें कि हमारे ठाकुरजी इस समय भोजन कर रहे हैं, हमारा बाहर बैठना ही ठीक है, तो प्रसन्नता होगी ।

अभिप्राय यह है कि हर हालत में अपनी प्रसन्नता ही इष्ट है ।

●

भक्त सोच रहा था—'भगवान् से क्या प्रार्थना करूँ?'
'प्रभो, मुक्ति दीजिये'—तो क्या वे माँगने पर देते हैं?
'विश्व का दुःख दूर कीजिये'—तो क्या इसका औचित्य वे नहीं समझते?

'मुझ पर प्रसन्न हो जाइये'—तब क्या वे अप्रसन्न हैं?

अन्तमें कहा—

'प्रभो! मै सब स्थितियों में सन्तुष्ट हूँ, मुझे कुछ नहीं चाहिये। मैं सम हूँ। अब तो प्रसन्न हो जाइये।'
भगवान्—'तुम झूठ बोल रहे हो। यदि तुम सब स्थितियों में सम और सन्तुष्ट हो तो तुम्हें मेरी प्रसन्नता की क्या आवश्यकता है?'

संसार की विविधता

*

किसी पदार्थ को परमात्मा से भिन्न समझना संसार है। समझ का नाम संसार है—ईंट-पत्थरका नहीं।

●

साधारण जन समझते हैं—देश, काल, वस्तु, शक्ति आदि से समझ बनती है। व्यवहार-दृष्टिसे यह सत्य भी है; परन्तु सवथा सच्ची यह बात है कि समझ ही उनका निर्माण करती है।

●

अपने को भोक्ता, दूसरे को भोग्य और दूसरे को भोक्ता, स्वयं को भोग्य समझना संसार है। दर असल एक परमात्मा है, उसमें भोक्ता-भोग्य का भेद नहीं है। पुरुष भोक्ता है, स्त्री भोग्य—यह भ्रम है। स्त्री भोक्ता और पुरुष भोग्य है—यह भी भ्रम है। विषय शरीरको खाये जा रहे हैं या शरीर विषयों को इसका निर्णय जज बनकर करो।

●

जैसे बेवकूफ आदमी दाद खुजलाने को ही सुख मानता है, वैसे ही त्वचा को त्वचा से, जीभ को मिर्च-मसाले से—इन्द्रियों को विषयों से घिसने को ही सुख कहा जाता है। यह तो केवल आवेग की शान्ति है। सुख कहाँ है? जिसे लोग सुख कहते है, वह तो इच्छा उदय होने के पूर्व भी था। फिर मिला क्या?

●

[आनन्द-

भोग्य क्षणभंगुर हैं। इन्द्रियों में सन्तोषजनक शक्ति नहीं। भोक्ता भिन्न-भिन्न कर्मों के अनुसार न्यूनाधिक भोग करने के लिये विवश है। ऐसी स्थितिमें संसार में क्या सुख है ?

तुम जज होकर निर्णय करो, भोगी सुखी है या त्यागी ? कहीं दोनों के निर्णायक जज साहब ! आप साक्षी ही तो सुखी नहीं है ?

परदेश जाते समय पति ने पत्नी से कहा—'मैं तुम्हारे लिए कितने दिनों का प्रबन्ध कर जाऊँ ?

स्त्री ने कहा—'जितनी मेरी आयु हो !

पति—'यह तो मुझे नहीं मालूम ।'

स्त्री—'जिसे मेरी आयु ज्ञात है, वही मेरी आजीविका का प्रबन्ध करेगा । तुम्हारी चिन्ता व्यर्थ है ।'

पड़ोसी ने पूछा—'क्यों जी, तुम्हारे स्वामी तुम्हारे खाने पीने का क्या प्रबन्ध कर गये हैं ?'

स्त्री बोली—'खाने वाले स्वामी परदेश गये, खिलाने वाले यहीं हैं ।'

●

प्रश्न—'स्वामी, आप पाप और पापियोंसे घृणा करते हैं ?

उत्तर—'मुझे अपने प्यारे से अवकाश ही कहाँ है ?

●

एक महात्मा जा रहे थे । किसी ने उनके ऊपर एक टोकरी राख डाल दी । शिष्य बिगड़े । महात्मा बोले—'आज मेरे ऊपर आग बरसने वाली थी । इन्हें धन्यवाद दो कि इन्होंने उसे रख कर दिया ।'

प्रेम, प्रेमी और प्रियतम

*

प्रेम ही सबसे बड़ा कर्म और सबसे बड़ी उपासना है।

●

प्रेम में अपनी ओर से कुछ नहीं चाहना चाहिये।

●

प्रेम ही एक ऐसा है जो ईश्वर को भी, सब पर शासन करने वाले को भी अपने वश में कर लेता है।

●

प्रेम में इष्ट देव का सुख ही अपना सुख है। उनकी अनुकूलता ही अपनी अनुकूलता है! जहाँ तक हो सके उनकी सुविधा ही देखनी चाहिये। अपने सुख के लिये उनकी मानसिक उलझन नहीं बढ़ानी चाहिये।

●

प्रेम में—'वे मुझसे बहुत प्रेम करते हैं,' यह विश्वास ही प्रेमी का जीवन है। इसके बिना तो वह मर जायगा। असलमें 'मैं प्रेम करता हूँ'—ऐसा सोचना प्रेम नहीं है। इससे अभिमान ही बढ़ता है। 'वे मुझसे बहुत प्रेम करते हैं,' ऐसा भाव प्रेम में बहुत आता है। यह विश्वास ही सम्बन्ध को गाढ़ करता है। सम्बन्ध से ममता और ममता की पराकाष्ठा ही प्रेम है।

●

प्रेम का यह स्वभाव ही है कि वह अनन्य चिन्तन के रूपमें प्रकट होता है। प्रीति की रीति यह है कि उसमें दूसरे के लिये अवकाश ही नहीं रहता। श्रीराधारानी के मन में कृष्ण और कृष्ण के मन में राधारानी के अतिरिक्त दूसरा कोई होता ही नहीं।

●

जिससे प्रेम होता है, उसकी याद अपने-आप आती है। उसे हम भूल ही नहीं सकते। कभी प्यासा पानी को भी भूलता है?

●

ईश्वरके साथ अपना कोई सम्बन्ध जोड़ भर लो, फिर तो जैसे अपने और सम्बन्धियोंकी याद आती रहती है, वैसे ही उनकी भी याद आयगी। फिर यही याद ध्यान में रूपान्तरित हो जाती हैं।

●

प्रेमी के लिये चार बातें अत्यन्त आवश्यक है—
विश्वास, सेवा-भाव, संबंध और नाम-जप।

इनमें भी नामजपकी महत्ता अधिक है। नाम-जप में रूप का स्मरण भी बना रहता है। तथा यह सभी अवस्थाओं में किया जा सकता है।

●

प्रेम नयी स्मृति, नया ध्यान, नया संबन्ध, नया जीवन एवं नयी स्थिति देता है। वह प्रियतम और प्रेमास्पद को मिलाकर एक कर देता है।

●

प्रेम में वेग आता ही तब है, जब उसमें रुकावट आती है और वह वेग उस रुकावट, बन्धन को तोड़ कर ही दम लेता है।

●

प्रेम की दृष्टि के बिना ईश्वर-का दर्शन होना सम्भव नहीं।

●

प्रेमी चाहता है चित्तवृत्ति प्रियतम में लगी रहे, सेवा का सौभाग्य मिले और वे सुखी रहें।

●

भगवान् से प्रेम होने पर—

१. संसार के लोगों से संबन्ध नहीं रह जाता। बने तो राम से, बिगड़े तो राम से। 'हरि सों जोरि सबन सों तोड़्यो।

२. अन्तर्मुखता आ जाती है अर्थात् उनसे उलझे रहने में ही मजा आता है।

३. शास्त्र की बात झूठी नहीं माळूम पड़ती।

●

अपने प्रत्येक संकल्प का, रोम रोम का ईश्वर के प्रेम में डूब जाना ही प्रेम है। प्रेम होने के बाद प्रतीत होता है कि हवा बनकर वही पंखा झल रहा है, सूर्य और चन्द्रमा बनकर प्रकाश दे रहा है और पृथ्वीके रूपमें वही अपनी गोद में बैठाये भी है।

●

अन्तःकरण की शुद्धि के लिए प्रेम से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं।

●

प्रेम मुँहमें आनेसे जूठा हो जाता है।
प्रेम पचकर रसायन बन जाता है।
प्रेम दिखानेसे संसार बन जाता है।
प्रेम ईर्ष्यासे नरक बन जाता है।
प्रेम अनेक से होने पर अधर्म बन जाता है।
प्रेम क्रिया में आने पर सेवा बन जाता है।
प्रेम स्वरूप में रहकर शुद्ध प्रेम रहता है।

●

अपने भगवान् के लिये एक ज़िद (दृढ़ निश्चय) होना चाहिये कि वे ऐसे हैं, यह हैं। यह ज़िद ही बाद में निष्ठा, अनुभव और प्रेम का रूप धारण करती है।

●

'हे विधाता, मैं तीव्र तपस्या करके तिल बनना चाहती हूँ।'

'इससे क्या होगा री, बावरी?'

'मैं अपनेको स्वच्छ करूँगी, कोल्हूमें पिराऊँगी, तेल बनकर हाटमें बिकूँगी। यदि मेरी एक बूँद भी प्रियतम के बालों तक पहुँच सकी तो...... ।'

'क्या उन्हें सुख पहुँचाने के लिये?'

'ना-ना, उनके बालोंका स्पर्श होते ही मैं जी जाऊँगी।'

'राम, राम! क्यों मरना चाहती है?'

मुकुन्द कहो! मैं मरी तो अब हूँ, जब प्रियतम मुझसे दूर हैं।'

●

जो रोते हैं, उनको भी भगवान् मिलते तो हैं, पर दया करके; और खिले हुए दिल को, प्रेम के अधीन होकर।

●

गोपी बन जाओ, कृष्ण झटपट मिल जायँगे।

●

प्रेमका स्वरूप है प्यास। पानीके अभावमें प्यास के कारण जैसी व्याकुलता होती है, वैसी ही यदि ईश्वर के लिये हो जाय तो वह मिल जाय। प्रेम में इसीको व्याकुलता कहते हैं।

प्रेमका बाप विश्वास है। बिना विश्वास के प्रीति नहीं हो सकती।

★

ज्ञान-कणिका

*

मैं सच्चिदानन्दघन, अद्वैत, अनन्त, निर्विकार आत्मा हूँ। मुझमें नाम-रूपात्मक द्वैतरूप विषयात्मक प्रपञ्चका अस्तित्व ही नहीं है। मैं शुद्ध अमन हूँ। इस प्रकार मन के अभाव निश्चय करके अपने स्वरूप में स्थित हो जाओ।

●

जाग्रत् एवं स्वप्न अवस्थामें मन विषयों का चिन्तन करता है, सुषुप्तिमें नहीं करता—समाधि और मूर्च्छामें भी नहीं। मै अवस्था नहीं हूँ, इनका साक्षी तुरीय हूँ। मन विकारी है, दृश्य है, जड़ है। मिथ्या विषय भावरूप हैं, उनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। मन की शान्त, घोर, मूढ़, सुख, दुःख आदि समस्त वृत्तियाँ दीख रही हैं।

(दीखने की स्थिति में मन पत्थर-सा निःसङ्कल्प हो जाता है।)

●

मैं स्वामी हूँ और मन मेरा सेवक। मैं जड़ शरीर नहीं। चेतन आत्मा हूँ। मेरे अधीन मन का अस्तित्व है। मैं जब मूर्खता से अपने को शरीर मान बैठता हूँ तब वह मेरा संचालन करने लगता है। रे मन, आ! जहाँ मै कहूँ; वहाँ निःसंकल्प हो जा। नहीं तो मैं तुझे छोड़ता हूँ। मैं यहाँ स्थिर हूँ, तेरी मौज।

●

 [आनन्द-

मेरे और जगत् के सारे मनों का संचालन ईश्वर ही करता है। जब वह परम कृपालु मेरे मन में पवित्रता, शान्ति की इच्छा दे रहा है तो क्या वह शान्ति न देगा? ईश्वर मेरे मन को पवित्र, अन्तर्मुख एवं शान्त बना रहा है। मैं पवित्र, अन्तर्मुख तथा शान्त हो रहा हूँ। अपने ईश्वर, अपने स्वरूपका मुझे स्पष्ट अनुभव हो रहा है।

●

अरे मन! तू जिस विषय का चिन्तन करने जा रहा है, क्या उससे सुन्दर और कुछ है ही नहीं? क्या ईश्वर और आत्मा भी तुझे प्यारे नहीं लगते? तब और का चिन्तन क्यों? शान्त स्थिति से उदासीनता क्यों? मेरे प्यारे पवित्र मन! आओ, सबसे श्रेष्ठ परमानन्दस्वरूप परमात्मा में स्थिर हो जाओ। मेरे प्रिय मित्र, कितने अच्छे हो तुम कि पवित्र, शान्त आत्मामें स्थित हो!

●

आप अपने मन को जैसा बनाना चाहते हैं, वैसा देखिये। वह उसी समय आपको वैसा दीखेगा। वस्तुतः देखने के सिवा और मन है ही क्या? यह बात ध्यानमें आते ही तत्क्षण आप मन से स्वतन्त्रताका अनुभव करेंगे।

●

उन दिनों काशी के काशीदेवी मठ में स्वामी श्री ज्योतिर्मयानन्दजी महाराज पधारे हुए थे। वे उच्च कोटि के विद्वान्, विवेकसम्पन्न, वैराग्यवान् और योगाभ्यासी थे। उनका शारीरिक सौन्दर्य भी कम आकर्षक नहीं था। उनके साथ ही ठाकुर प्रसिद्धनारायण सिंह भी कुण्डलिनी-जागरण का अभ्यास करते थे। इसलिये उनके बारे में बहुत-कुछ सुन रखा था। मैं उनका दर्शन करने गया। उन्होंने सहज मुस्कान के साथ कहा—'संसार के भोग भोगने हों तो भोग लो। शुद्ध जीवन का निर्माण करना हो तो कर लो। संसार को मिटाना कोई बड़ी बात नहीं। यह तो मिथ्या है। जान लेने मात्र से मिथ्याकी निवृत्ति हो जाती है।' उन्होंने चुटकी बजाते हुए कहा—'संसार तो यों मिटता है।'

उनकी यह बात मुझे आज भी ज्यों-की-त्यों याद है। इस उपदेश का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा था।

सत् साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट के प्रकाशन :-

*

	रु.
१. माण्डूक्य प्रवचन	४)
२. भक्ति रहस्य	२)
३. सत्संग, साधन और फल	३)
४. श्रीमद्भागवत रहस्य	२)
५. सुगम भक्ति मार्ग	२)
६. भगवान् के पाँच अवतार	२)
७. ईशावास्य प्रवचन	१,२५, न. पै.